विस्थापन की पीड़ा और अस्मिता की खोज एक जीवंत दस्तावेज

गायत्री बाग
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
रमा देवी महिला विश्वविद्यालय,भुवनेश्वर, ओड़िशा

सारांश- यह शोध आलेख 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास के संदर्भ में उन सामाजिक, सांस्कृतिक, और व्यक्तिगत अनुभवों को केंद्रित करता है, जो विस्थापन के कारण उत्पन्न होते हैं। विस्थापन केवल भौगोलिक क्षेत्रों का परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह एक व्यक्ति या समुदाय के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक विशेष की पहचान और अस्तित्व पर गहरी छाप छोड़ता है। विस्थापन से जुड़े दर्द, जैसे- जड़ से कटने की पीड़ा, घर और समुदाय खोने का दुःख, अपने आत्मिक रिश्ते से दूर और सांस्कृतिक अनिश्चितता पर प्रकाश डाला जाता है। इस पीड़ा में शारीरिक, मानसिक, और भावनात्मक आघात शामिल होते हैं, जो विस्थापित व्यक्ति या समुदाय को लंबे समय तक प्रभावित करते हैं। उदाहरण: अपनी पुश्तैनी जमीन खोना का दुःख, शरणार्थियों का दर्द, नए शहर में आर्थिक तंगी से गुजरने की पीड़ा, आदिवासी विस्थापन, विभाजन का दर्द और प्रवासी मज़दूरों के संघर्ष।

बीज शब्द- विस्थापन, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, व्यक्तिगत, विभाजन, शरणार्थी , प्रवासी, संघर्ष, समुदाय।

विस्थापन की अवधारणा का मूल भाव 'स्थानांतरण' से है । विस्थापन की सैद्धांतिकी विविध दृष्टिकोणों से उत्पन्न होती है। यह विस्थापन को भौतिकी के स्तर पर ही नहीं बल्कि समाजशास्त्र, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक आदि दृष्टिकोणों से विश्लेषित करता है । ऐच्छिक-अनैच्छिक विस्थापन विभाजन और राजनैतिक तनाव, औद्योगीकरण और शहरीकरण, प्राकृतिक आपदाएँ तथा विकास परियोजनाएँ आदि विविध कारणों से उत्पन्न होता है। यह एक जटिल एवं बहुआयामी प्रक्रिया है जिसके कारण लोगों को अपनी जड़ से उखड़ जाने और दूसरी जगह जम न पाने की विवशता तथा अपने मूल जन्मभूमि को जीवन के अंतिम क्षण तक फिर से न पाने का दर्द महज़ एक दर्द नहीं अपनी अस्मिता की खोज है। यह विस्थापितों के लिए भौतिक स्थान से बाहर जाने का मुद्दा नहीं बल्कि एक गहरी मानसिक, सांस्कृतिक और पहचान संकट की प्रक्रिया है। 21 वीं सदी के यह भूमंडलीकरण का दौर जिसमें उपन्यासों के बदलते परिदृश्य में विस्थापन एक प्रमुख विषय नहीं महज़ एक गहरा मानसिक सामाजिक मुद्दा है क्योंकि हिंदी उपन्यास मानव जीवन का गद्य है। यह सिर्फ एक गद्य ही नहीं है बल्कि एक ऐसी कला है जो संपूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है । उपन्यास अन्य कलाओं से अलग करने वाली विशेषता रखती है जिसमें गुप्त जीवन को प्रत्यक्ष करने की सबसे अधिक शक्ति है, जिसमें उपन्यासकार सदैव अपनी लेखनी का विषय सामाजिक संरचना, अपने युग तथा उसकी विविध पहलुओं को समग्रता से टटोलने का प्रयास करता है । विस्थापन के बाद व्यक्ति, समाज और समुदाय जैसे क्षेत्रों को नई परिस्थितियों में अपनी पहचान और स्थान को पुनः परिभाषित करने का विराट संघर्ष है।

यह उस समाज, समुदाय, संस्कृति और व्यक्ति की खोज है जो सांस्कृतिक, भाषाई, सामाजिक समायोजन के माध्यम से एक नई दिशा की ओंर अग्रसर होती है, लेकिन कभी-कभी पहचान का संकट भी उत्पन्न करती है। विस्थापन की स्थितियाँ या तो उसकी उत्पीड़न भावना को या तो अक्सर व्यक्ति की मूल पहचान को चुनौती देती हैं और नई पहचान को गढ़ने का प्रयास करती हैं। हिन्दी उपन्यास में विस्थापन की त्रासदी एक केन्द्रीय विषय रहा है । विस्थापन की विनाशकारी प्रभाव समाज की संरचना को तोड़ता है, बल्कि मानवता की बुनियादी संवेदनशीलता और पहचान पर भी आघात करता है। अर्थात यूं कहें कि यह जग जीवन की गति को ही एवज़ कर दी है। साहित्य में विस्थापन और अस्मिता की खोज एक प्रमुख विषय रहा है। इस विषय को केंद्र में रखकर समाज और व्यक्ति को नए रूप मर गढ़ने वाले कई लेखक, कवि, और उपन्यासकार हुए हैं जो विस्थापन की पीड़ा और अस्मिता की खोज को अपनी रचनाओं में दर्शाते हैं। विभाजन के साहित्य (मंटो, भीष्म साहनी) में विस्थापन और पहचान का संकट, प्रवासी साहित्य (झुम्पा लाहिड़ी, सलमान रुश्दी) में सांस्कृतिक संघर्ष और पहचान की खोज। ठीक उसी प्रकार हिन्दी साहित्य की सुप्रसिद्ध लेखिका अलका सरावगी ने अपने उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए'

में व्यक्ति, समुदाय और समाज दोनों की अस्मिता और विस्थापन की व्यथा को दर्शाया है। कुछ हद तक आदिवासी साहित्य में विस्थापन और अस्तित्व के लिए संघर्ष का भी चित्रण मिलता है।

हिन्दी उपन्यासों के माध्यम से विस्थापितों की त्रासदी के विभिन्न रूपों को और उनके प्रभावों को समझने और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। अलका सरावगी कृत उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' दोहरे विभाजन और विस्थापन की अथाह वेदना को व्यक्त करता है । जिस प्रकार प्रलयकारी जल पलावन अपने लहरों से विशाल वृक्ष को उसकी जड़ से उखाड़ कर अवांछित भूमि पर पटक देती है उसी प्रकार उपन्यास का नायक 'कुलभूषण जैन' अपने जड़ से जो पूर्वी पाकिस्तान (आज का बांग्लादेश) के कुष्टिया से उखड़ कर कोलकाता में आश्रय की तलाश में भटक रहा है । भारत-पाक विभाजन के उपरांत पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश नाम से रूपांतरित हुआ और बांग्लादेश में कुष्टिया शहर को स्थापित किया गया । हिंदू मारवाड़ी, हिंदू बंगालियों एवं बिहारियों की पीढ़ी दर पीढ़ी के द्वारा कुष्टिया शहर को सँवारने में अपनी पूंजी, मान – मर्यादा, सपने, उम्मीद तथा सम्पूर्ण जीवन समाहित किया गया। यह कुष्टिया शहर प्रथम महायुद्ध तक जूट उत्पादन में दुनिया भर में प्रसिद्ध था जहाँ कुलभूषण के 'जैनी' मारवाड़ी परिवार जूटों के सबसे बड़े व्यवसायी थे तथा उनका अच्छा खासा किराने का होलसेल था । प्रतिष्ठित परिवार समेत कुलभूषण को अपने समाज से जबरन निर्वासित होना पड़ा ।

"सच पूछो तो वह जितने दिन ईस्ट बंगाल में या ईस्ट पाकिस्तान में रहा, उसका जीवन कभी पटरी से नहीं उतरा। 'भूषौन बाबू' कहकर उसे सब बुलाते। 'बाबू' लगाये बिना कभी उसके घरवालों तक ने उसे नहीं पुकारा होगा ।"[1]

1964 के दंगे नोआखाली और 1967 के बारिसाल के दंगे के उपरांत 1971 में बंगाल के मुक्ति वाहिनी सेना के द्वारा बांग्लादेश की आज़ादी का आंदोलन हुआ । विद्रोह में भाग लेने वाले लोग तथा पश्चिमी पाकिस्तानी सेना अन्याय अत्याचार करते हुए बल पूर्वक बंगाली हिंदुओं और बंगाली मुसलमानों को कुचलने लगे और हिंदुओं की संपत्ति को लूट-मार कर मौत के घाट उतार दिए । बलूचिस्तान की सेना तथा पश्चिमी पाकिस्तान सेनाओं की नर संहार की मार्मिकता को यह उपन्यास स्पष्ट करती है । इस प्रकार विभाजन तथा सांप्रदायिक दंगा रूपी ज्वालामुखी से विस्थापन की त्रासदी विस्फोट हुआ जिसका प्रभाव कुलभूषण के परिवार तथा उनके सम्पूर्ण समुदाय पर पड़ा।

'कुल भूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विस्थापन की पीड़ा का जीवंत दस्तावेज परिलक्षित होता है । इसमें पलायन का दर्द इतना खौफनाक है कि कल्पना मात्र से ही स्नायु तंत्र में कंपन सृष्टि हो जाती है । समाज में प्रतिष्ठित वर्ग को अपना नाम और संपत्ति लूटाना स्वयं की आत्मा खोना तथा सर्वहरा वर्ग के लिए सबसे बड़ा दुख है, अपने पड़ोसी को खोना जो विपरीत परिस्थितियों में सुख-दुख के भागी हुआ करते थे । प्रस्तुत उपन्यास में श्यामा धोबी के पिता की मनोव्यथा है कि वे किसके कपड़े धोएंगे ? उनके घर-द्वार, उनकी नदी, उनकी धोबी घाट छोड़कर वे कहाँ जाएंगे ?

उपन्यास में मानवीयता का हनन किस हद तक हुआ है उसका जीवंत दस्तावेज की झांकी प्रस्तुत किया गया है । रिफ्यूजियों के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा राहत शिविरों की व्यवस्था की गयी थी, उसमें भी अमानवीय पाश्विक वृति तथा भ्रष्टाचार एवं शोषण परिलक्षित होता है । शरद नस्कर जैसे ठग और चाटुकार शरणार्थियों की मजबूरी का फायदा उठाकर, उन्हें ठगकर अमीर हो जाता है । भूख की पीड़ा से मुक्ति तथा अन्न की एक एक दाना के लिए लोगों को क्या कुछ नहीं करना पड़ा। उनकी विवशता का प्रभाव पाठक मन में गहराई से पड़ता है।

"बाबू तुम देख ही रहे हो मेरी बेटी ललिता चौदह साल की हो गयी है। इधर-उधर खाने का जुगाड़ करती फिरती है। जहाँ भूख को मिटाने हेतु देह तक को बेचा जाता है।"[2]

"उन्हीं कैंपों में बलवान सिंह जैसे लोग भी हैं जो कहते हैं- क्या लौंडे यही माल लाता रहेगा ? दूसरे माल का धंधा भी कर। वहां छोकरियाँ भी बहुत हैं। एक दो ले आ 10 रुपये की बक्शीश दूंगा।"[3]

अपनी मूल भूमि तथा मूल संस्कृति से सैंकड़ों मील दूर अपना सर्वस्व लुटाकर शरणार्थियों को अभिशप्त की भाँति जीना पड़ता है । नए समाज और सांकृतिक परिवेश में स्वयं को ढालने में न जाने उसे क्या कुछ नहीं करना पड़ता है और विपरीत परिस्थिति में तथा सामाजिक असमानता के कारण मजबूरन अपने नस्लीय पहचान

जैसे नाम, जाति, गोत्र, धर्म आदि तक छिपाना पड़ता है । पर अवसर पाने पर अपने मूल पहचान लिए सामने भी आता है अपने मूल नाम के द्वारा ही सही अपनी उपस्थिति जाहिर कर सके क्योंकि पहचान और अस्मिता के साथ नाम का गहरा संबंध होता है । कुलभूषण भले ही भौगालिक रूप से विस्थापित हुआ परंतु आज भी अपने जड़ से अपनी पुरानी पहचान से अंतरिक रूप से जुड़ा हुआ है अवसर मिलने पर अपना जन्म का नाम दर्ज कराना चाहता है।

"आप कुलभूषण जैन का नाम दर्ज कीजियेगा। गोपाल चन्द्र दास का नहीं।"[4]

रिफ्यूजी की अस्मिता की खोज केवल व्यक्तिगत प्रयास से संभव नहीं है, बल्कि यह स्थानीय और वैश्विक समुदायों की जिम्मेदारी है। व्यक्तिक चेतना को तथा उसकी पहचान की पीड़ा लेखिका उपन्यास में गहराई से चित्रित करती हैं।

“कुलभूषण भी हँसा था- “नाम में क्या रखा है, जीवन में कोई मेल थोड़े ही होगा।" बात-बात में पता चला कि वह एक पत्रकार है और पिछले पचास साल में पूर्वी पाकिस्तान से आये हिन्दू शरणार्थियों पर किताब लिख रहा है। पत्रकार को जब पता चला कि वह उस पार कुष्टिया से है, तो वह उछल पड़ा था। उसने अपने घर बुलाकर भूषण का तीन बार लम्बा इंटरव्यू लिया था। तब भूषण ने उसे अपना पूरा नाम लिखवाया था। चलो, कहीं तो उसका यह जन्म का नाम हमेशा रहेगा। वह अन्तिम बातचीत के बाद पत्रकार को जाते-जाते पाँचवीं बार कहकर गया था- "कुलभूषण जैन नाम दर्ज कीजिएगा।” दरवाज़ा बन्द करने के पहले उसने जैसे मुँह खोला कि कहे कि चलता हूँ, कि पत्रकार कह उठा था, 'कुलभूषण जैन का नाम दर्ज कर लिया है।' फिर वे दोनों अपनी-अपनी हँसी हँस पड़े थे।"[5]

विस्थापित स्त्री की भाषा, परंपराएं, रीति-रिवाज और जीवनशैली को नए परिवेश हाशिये पर रख देती । स्वयं का और अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की कोशिश, सामाजिक असमानता के कारण नए समाज में अपनी जगह बनाने की कठिनाई, विस्थापन के दौरान या उसके बाद में शारीरिक और मानसिक रूप से उत्पीड़न का शिकार होना, भविष्य की अनिश्चितता तथा अपने बच्चों और परिवार के लिए सुरक्षित और स्थिर जीवन की तलाश तथा उनकी अस्मिता के संघर्ष आदि की अथाह वेदना को इस उपन्यास में व्यक्त किया गया है । उपन्यास में पत्रकार ने कहा- "हाँ, बहुत-सी रिफ्यूजी लड़कियाँ, जो अच्छे परिवारों की थीं, इसी तरह बिनब्याही रह गयीं। उनके ऊपर अपने बूढ़े या बीमार माँ-बाप और परिवार को पालने का बोझ आ पड़ा। उनके ऊपर यौवन आया और बिना किसी के देखे ही चला गया। भीड़ भरी बसों में धक्के खातीं- कहीं ऑफ़िसों में, तो कहीं सेल्सगर्ल बनकर, कहीं टीचर, तो कहीं अस्पतालों में नर्स बनकर, तो कहीं सिलाई मशीन चलाकर या कढ़ाई-बुनाई करके वे अपना परिवार पालती रह गयीं।"[6] उपन्यास में सर्वहारा वर्ग की नारी स्वयं के लिए तथा अपने नस्ल के लिए अधिकारों व पहचान की मांग करती है। इसमें नारी जीवन की व्यथा और उत्पीड़न की महा गाथा है।

"कुलभूषण ने कहा- "एक बात किन्तु आप भूल गये। आधी से ज़्यादा रिफ्यूजी औरतें, जो बिना पढ़ी-लिखी थीं या एकदम ग़रीब परिवार की थीं, उनके लिए एक काम हमेशा मौजूद था। कम्युनिस्ट पार्टी की रैलियों में धूप, धूल, बारिश, ठण्ड में सड़क पर अपने अधिकारों की माँग करती जुलूस में चलती औरतें भी ये ही थीं। मेरी पत्नी रीमा सरकार के साथ इन जुलूसों में मैंने भी हिस्सा लिया।”[7] विस्थापित समुदायों को अक्सर ' बाहरी ' या 'अवैध' के रूप में देखा जाता है । जिससे उनके चरित्र को संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है । उनके साथ कई बार समाज द्वारा गलत धारणाएं जुड़ जाती हैं। उपन्यास में कुलभूषण जब सात साल का था तब से वह निर्वासित हो रहा है, दूसरी या तीसरी बार घर छोड़ने की स्मृति उसके मन में जागृत हो सकती है । उसके साथ आए शरणार्थी कैसे-न-कैसे फिर जम गये थे। केवल वह एक नौकरी से दूसरी नौकरी, एक घर से दूसरे घर तक धक्के खाता हुआ अपना आश्रय स्थल खोजता रह गया था। इस बात से वह भली भांति अवगत था कि लोगों को संदेह है कि सन् चौंसठ के दंगों के उपरांत हुई पलायन में भूषण ने चाँदी का बड़ा थाल चुराकर बेच दिया था। जब कि हुआ यूं कि बॉर्डर पार करते समय रेल में भागने की आपाधापी में बड़े थाल वाली पोटली न जाने कहीं छूट गयी या फिर भारत की सीमा में पहुंचाने वाली दलालों की टोली ने दबा ली थी । पोटली हेतु अकेले बॉर्डर तक वापस जाने पर भी पोटली नहीं

मिला। पोटली उसके जिम्मेदारी होने के कारण तथा उसकी थाल वाली पोटली खो जाने पर उसके ही परिवार वाले उसे चोर समझते हैं।

"बड़े भैया अचानक चुप होकर कुछ सोचने लगे थे। भूषण जानता था कि वे बड़े थाल वाली पोटली के बारे में सोच रहे हैं। भले ही पहले यह बात हो चुकी थी कि उसने चाँदी का थाल नहीं चुराया। अगर चुराया होता, तो ऐसी फटीचर जैसी ज़िन्दगी काटता वह? पर मन में शक अगर एक बार घुस जाता है तो वह वायरस की तरह जब-तब ज़िन्दा हो जाता है।"[8]

विस्थापन की मानसिक पीड़ा एक गहरी और जटिल मनोवैज्ञानिक स्थिति है, जो व्यक्ति के जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। यह पीड़ा व्यक्ति को अंदर ही अंदर कुरेदती रहती है, उसकी अकेलापन और अलगाव की भावना भावनात्मक दर्द का मुख्य कारण बनता है परंतु वह अपनी पीड़ा को किसी के समक्ष अभिव्यक्त नहीं कर पाता है चाहे अपने भाई ही क्यों न हो। "कुलभूषण को दर्द सहन नहीं हुआ, तो वह एक मकान की चहारदीवारी पर लगी लोहे की रेलिंग को पकड़कर खड़ा हो गया। जाने वह कितनी देर वहाँ खड़ा गाड़ियों, बसों और मिनीबसों के हॉर्न सुनता सड़क का धुआं खाता रहा। फिर होश आने पर उसने भूलने का बटन दबा दिया और वापस अपने से बात करता चलने लगा-इस तरह तुमको रास्ते में एक मकान की दीवार से पीठ टिकाये खड़े हुए किसी ने देख लिया तो जाने क्या कहेगा। यह जगह बड़े भाई के घर से ज़्यादा दूर नहीं है।"[9] 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास केवल एक व्यक्ति कुलभूषण की कहानी नहीं है, बल्कि यह समाज, समुदाय और जाति के उन सभी लोगों की आवाज है, जो अपनी पहचान, अपना अधिकार और सम्मान के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह उपन्यास विस्थापन की पीड़ा और अस्मिता की खोज का एक ज्वलंत उदहारण है, जिसमें वास्तविकता, यथार्थ बोध और सच्चाई है जो मानवीय संघर्ष और उसकी अदम्य इच्छाशक्ति को गहराई से रेखांकित करता है।

निष्कर्ष- उपन्यास में विस्थापित कुलभूषण तथा अन्य शरणार्थी अपने घर, परिवार, मातृभूमि और संस्कृति से दूर होते हैं, यह एक गहरी और दर्दनाक यात्रा है, जिसमें उनकी सामाजिक पहचान पर भी सवाल उठते हैं। शरणार्थी नए माहौल में अपनी पहचान की तलाश करता है, जबकि वह अपनी पुरानी जड़ों के आंतरिक रूप से जुड़ा रहता है। यह दस्तावेज़ विस्थापन की मानसिकता, सांस्कृतिक अस्मिता, और अस्तित्व के संघर्ष को प्रकट करता है, जिससे यह दर्शाता है कि विस्थापित व्यक्ति केवल भौतिक रूप से नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक रूप से भी एक नई पहचान बनाने की कोशिश करता है।

सन्दर्भ सूची-

1. सरावगी, अलका – कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए , वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2020, पृष्ठ संख्या- 10
2. वही, पृष्ठ संख्या- 145
3. वही, पृष्ठ संख्या-146
4. वही, पृष्ठ संख्या-201
5. वही, पृष्ठ संख्या- 45
6. वही, पृष्ठ संख्या- 197
7. वही, पृष्ठ संख्या-197
8. वही, पृष्ठ संख्या- 12
9. वही, पृष्ठ संख्या- 212